अंतरा-शब्दशक्ति

सुनो कहने दो

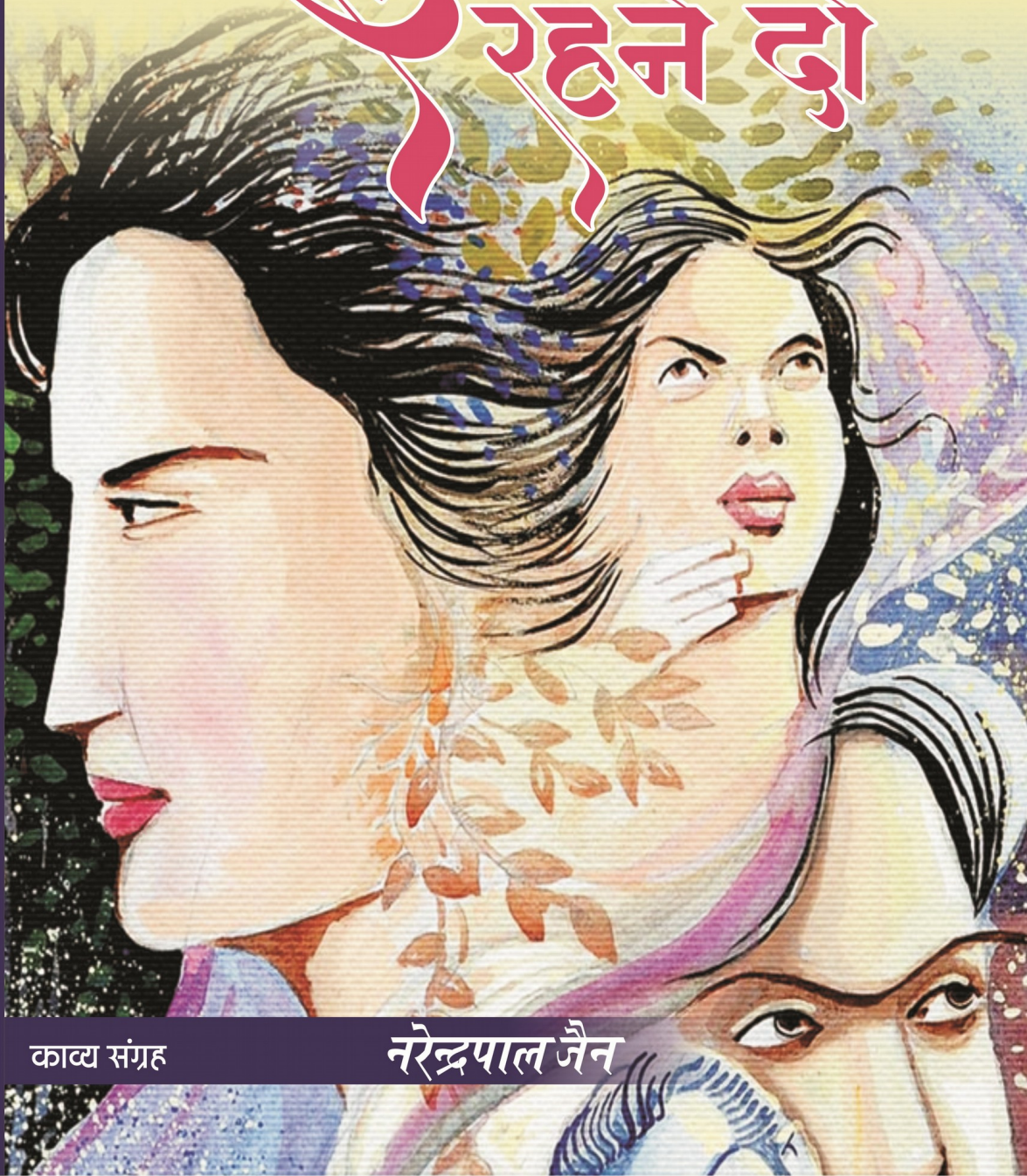

काव्य संग्रह

नरेन्द्रपाल जैन

सुनो! रहने दो

किसी सृजनधर्मी का अनवरत सृजन करना उसकी साधना का द्योतक है। यह तभी संभव है जब माँ सरस्वती की कृपा होती है। ऐसे कईं साहित्य श्रेष्ठ हैं, जो कि अपनी साधना से साहित्य जगत को लाभांवित किये जा रहे हैं। उन्हीं प्रेरणा पूँज उजालों से प्रेरित होकर मैंने कहा! दीपक जलाने का प्रयास किया है। पूर्व में मेरे ,कल काव्य संग्रह मनोभाव, गागर, मंथन....एक सोच, प्यासे नगमें और जीवन माला के पश्चात् प्रस्तुत काव्य संग्रह "सुनो! रहने दो" आपके कर कमलों में है।

यह मुक्त कविताओं का संग्रह है, जिन्हें आधुनिक कविताओं का चोला ओढाने का एवं आप तक पहुँचाने का प्रयास किया है। इस कविता माला में सामाजिक चेतना, देश भक्ति, श्रृंगार, जिंदगी, विडम्बनायें, व्यंग्य आदि विविधताओं के पुश्प पिरोने का प्रयास किया है। मुझे आषा है कि आप अपने मार्गदर्षन और स्नेह से सींचकर इसे सुवासित करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक अपने दिवंगत माता-पिता को समर्पित करता हूँ। उनके दिव्य आषीर्वाद के बिना मेरे लिये कुछ भी संभव नहीं है।

-- नरेन्द्रपाल जैन

माँ सरस्वती की आरती

हेम मुकुट माथ जड़ा
हस्त वीणा धारती
हंस मयूर पद रमै
उतारूँ मात आरती

ममता कर से देती वर
नैत्र करूणा झारती
शोभती सुवर्ण मुख
उतारूँ मात आरती

दमके माल मोतियन
ग्रन्थ ज्ञान उच्चारती
तान मधुर शब्द की
उतारूँ मात आरती

दीप ज्ञान दीप्त कर
भव से हमें तारती
“नरेन्द्र” वन्दे युगचरण
उतारूँ मात आरती।

अनुक्रमणिका

1. सुनो! रहने दो 9
2. शब्दों की सीढ़ियाँ.....10
3. सौंदर्य बोध 11
4. बुद्धिजीवी 12
5. जिंदगी 13
6. राम नाम 14
7. कानून रोता है 16
8. वृद्ध पहाड़ 18
9. माँ का काजल.....19
10. ओस की बूँद 20
11. हिसाब 21
12. आँख मिचैली 22
13. आँसू की बून्द..... 23
14. खत 24
15. हमारी दौलत 26
16. बैठक 27
17. समय परिवर्तन 29
18. टूटते शब्द 30
19. शहादत 31
20. थोडा आराम कर लूँ 32
21. सावन 34
22. जिद्दी जिंदगी 35
23. साहित्य रूप 36
24. बेरोजगारी.....39

25. जीना चाहता हूँ 40
26. मित्र 42
27. अस्तित्व 44
28. बिजली 46
29. संस्कृति 48
30. बचपन 49
31. एक कविता तुम पर 50
32. रोटी 51
33. प्रेम की मूरत 52
34. कविताओं से मुलाकात 53
35. वर्ष 54
36. पतवार 56
37. समय की गति.....57
38. खेत 58
39. पंख 59
40. कविता का अवतरण 60
41. रिश्ते 62
42. दराज 63
43. उन दिनों की बात 64
44. कवि तुम जिंदा हो 66
45. विलीन ..... .67
46. माँ 68
47. लक्ष्मी का श्रृंगार 69
48. अँधेरों से मुलाकात 70
49. बेटी 71
50. जिंदगी तेरे कितने रूप 72

51. फैमेली डॉक्टर 74
52. सिस्टम 77
53. दर्पण 78
54. जुगलबंदी 79
55. चुनाव 80
56. कवितायें 82
57. समय 83
58. छोटी सी जिंदगी 84
59. याद 85
60. जिंदगी ऐसी भी है 86
61. सपने 87
62. संबंध 88
63. ओह माँ 89
64. अर्थ 90
65. अभिसार 91
66. तन्हा 92
67. वजूद 93
68. आभास 94
69. वस्तु 94
70. आँसू 95
71. रिवाज 95
72. तरीका 96
73. आहट 9
6

सुनो! रहने दो

सुनो! रहने दो,
तुम्हें संवरने की जरूरत नहीं है।
तुम मेरी जीवन रचना हो,
जिन्दगी के हर हिस्से को
शब्दों का लिबास पहनाया,
पारिवारिक रिश्तों, प्रेम
और संवेदनाओं की
पँक्तिबद्ध चादर
ओढ़ी हुई तुम ।
भावनाओं के छंद,
प्रीत के बिम्ब लिये,
मृदुता के अलंकार,
वक्त के साथ
हर विधा में ढली तुम
जीवन दर्शन और
माधुर्य से ओतप्रोत,
मन और मस्तिष्क की
भीतरी सतह को छूने वाली
एक रचना हो तुम ।

शब्दों की सीढ़ियाँ

शब्दों की सीढियाँ
जिन्दगी के
ताने-बानों से
बुनी एक चादर,
जिसमें से बाहर
निकले हुए
उम्मीदों के पैर ।
श्रम के
खुले सिर पर
बरसती
समय की
धूप और बारिश ।
तभी लड़खड़ाते
कदमों को
थामा कलम ने ।
जाना है मुझे
तलहटी से चोटी तक
हौसलों की स्याही
उड़ेलता
चढ़ रहा हूँ
शब्दों की सीढियाँ ।

सौंदर्य बोध

सौंदर्य बोध
प्रातःकालीन प्रकृति की
स्निग्धता है
तुम्हारे नयन।
कपोल की चारुता
दृष्टिगतहोता
मुखेन्दु।
अन्तःकरण मेरा
हो रहा है
किंकर्तव्यविमूढ़।
कैसे करूँ
उभय शशि की
तारतम्यता,
मैं अमूढ़दृष्टि
आकिंचञ्य भावों से
आच्छादित मन
श्वेत रजत और कुंदन
वर्ण से शोभित तुम
अवांछित लब्धि
विलोकित कर
अचंभित हूँ।
तुम्हीं विस्तारो
मेरा प्रेमपथ।

बुद्धिजीवी

हाँ....मैं बुद्धिजीवी हूँ
“दूसरों की बुद्धि पर जीने वाला” प्राणी।
ये मेरा भ्रम नहीं, आदत है
गलतफहमी रखते हुए
अपना काम निकालना ।
तम्बाकू, चुना, हथेली, तर्जनी
(कभी-कभी अँगूठा भी)
और मेरी बुद्धि से तैयार मिश्रण
जिसका होंठो के अंदरूनी और
दाँतों के बीच स्थान आरक्षित।
अपनी गरीबी दर्शाकर
माथे पर कुछ सलवटें बनाकर उसे रखना।
वाह रे जिव्हा तेरी बुद्धि !
उस स्वाद की आदत होते हुए भी
कुछ कचरे को नफरत से थूँकने का नाटक।
अरे ये क्या ?
कुछ ही देर में तर्जनी और अँगूठा
उसे फेंकने के लिए झट से तैयार।
जिनकी मिश्रण बनाने में अहम भूमिका थी।
जमाने में सार्थक है,
मेरी बुद्धिजीवि की आदत का होना ।

जिंदगी

दिल की व्याकरण
दिल की वर्णमाला
गूँथ रही कुछ शब्द
यति, गति और
व्याकरण से सुसज्जित
भावनाएँ
अल्पविराम से
पूर्ण विराम की ओर
बढ़ती हुई
गेय, तुकांत, अतुकांत
अनेक रूप लिए
मन में नव उमंग भरती
कहीं टूटता लय
कहीं सरगम से सजी
कहीं ऊँचे आलाप
तो कहीं निम्न स्वर
कभी वाद्य बजे
तो कभी बेसुरी भी हुई।
ए जिन्दगी !
क्या खूब जिया मैने तुझे
गीत की तरह,
कविता की तरह ।

राम नाम

'राम नाम अनिमेष रहा'
रुदन वदन से हुआ आगमन
जगवायु का किया आचमन
जन्म हुआ या पुर्नजन्म ये,
आकुल व्याकुल हुए तन-मन।
जब पूरव भव निष्प्राण हुए
तब धार नया तन प्राण हुए
नव रसना काय स्पर्श हुए,
चक्षु श्रवणेंद्रिय घ्राण हुए ।
जीवन में सहाय लिया छलका
तब पाप घड़ा एक दिन छलका
जब भार लिया कर में हल का,
हुई मुदित फसल औमन हल्का ।
जब काम नेक में विघ्न हुए
उपकारी के ही कृतघ्न हुए,
जब उर्ध्व उड़ान के मन पंछी,
मायावी डोर संलग्न हुए ।
जब भाव ब्रह्म के भग्न हुए
मिथ्या के निशाचर नग्न हुए
भवसागर से तो वे तर गए,
जो धर्म समन्द निमग्न हुए ।
मन पाखण्डों से कलुषित है
पर आडम्बर से विभूषित है
नहीं वश में है ये अश्व कहीं,
चहुंओर ही मारग दूषित है ।

जब स्वयं ही भू भावो हुआ
माया का ही परिवेश हुआ
जब मान की अग्नि क्या धधकी
नयनों में ही आवेश हुआ ।
अब जर्जर तन ही शेष रहा
तृष्णा का भाव अशेष रहा
जब छूट गये ये विशेष सकल,
तब राम नाम अनिमेष रहा ।
तब राम नाम अनिमेष रहा ।

कानून रोता है

अरे!
ऐसे क्या देख रहे हो
मुझे ।
सिर्फ पट्टी बंधी है
मेरी आँखों पर--
अँधा नहीं हूँ ।
मैं गांधारी हूँ
धृतराष्ट्र नहीं ।
और हाँ
मैं लचीला हूँ,
स्वयं टूटता नहीं हूँ
ये बात अलग है
कि मुझे तोड़ दिया जाता है ।
लेकिन तुम्हारी आँखों पर
पट्टी तो नहीं है न...
फिर अनदेखा क्यों करते हो ।
तुमने मुझे चीखते सुना होगा
दामिनी के मुँह से....
निर्लज्ज होते भी सुना होगा ।
कभी देहाती कुबडाई हुई
कमर की चाल में चलते
देखा होगा
मेरी ही सीढ़ियों पर ।
कभी खरीद-फरोख्त
की गयी मेरी,

कभी बेबस भी हुआ ।
कभी रखवालों ने लूटा
तो कभी जानकारों ने मरोड़ा ।
मैं कभी सोता नहीं हूँ
मुझे मूर्छित कर दिया जाता है
सच को डूबते देख
आपका ये
कानून भी रोता है ।
लेकिन हाँ----
मैं गूँगा नहीं हूँ
जब बोलता हूँ तो
बराबर तोलता हूँ,
इन्साफ का तराजू है
कोई तवायफ के तन का
कपड़ा नहीं.....।

वृद्ध पहाड़

कांपते हाथ,
धुंधलाई आँखें
लडखडाते पैर
क्यों झुका हुआ है
उन्नत शिखर का भाल ?
क्यों कमजोर हो गयी
जिन्दगी की तलहटी ?
जिसके दम पर खडा था
अनुभवों का पहाड़।
सहे थे जिसने
समय के कई थपेडे
उतार-चढ़ाव की रेखा,
अब कोई नहीं बनाना चाहता
उस पर अपने आशियाने,
पंछी भी ढूँढ रहे हैं
अपना नया ठिकाना।
ना जाने कब ढह जाये,
तलहटी से उखड़ता
वृद्ध पहाड़।

माँ का काजल

आँखों में लगाती थी
कुछ भद्दे से कोने निकालकर,
ललाट पर टीका
पेट पर लकीर
और पैरों के तलवों पर
कुछ निशान.....।
न जाने बचपन में
माँ कहाँ-कहाँ लगाती थी
काजल
दुनियाँ की नजरों से
हमें बचाने।

ओस की बूँद

अरे ओस की बूँदों
ये क्या हो गया है तुम्हें?
न चमक न दमक तुम में
आज इतनी सफेद और ठोस क्यों हों?
और पहले से भी अधिक शीतल
तभी सूर्य ने बिखेरी अपनी किरणें
और पिघलने लगी
मुस्कुराने लगी ओस।
परन्तु ये क्या ?
तुम कहाँ जाने लगी
क्यों होने लगी हो
अस्तित्वहीन ?
ओस ने आँसू बहाते हुये कहा
कल तुम्हें फिर दिखेंगी
बूँदे,
इसी पत्ते पर
किन्तु वो मैं नहीं रहूँगी
मैं तो भटकती रहूँगी
जीवन चक्र के घुमाव में।

हिसाब

मूल और ब्याज
वाह बेटा वाह
हमने जो किया
उसे तू फर्ज कह रहा है
तो अपने फर्ज से
क्यों मुकर रहा है ?
जरा देख तो अपनी इस काया को
तेरी हर नस में बह रहा है
मेरा दूध रक्त बनकर।
और तू हिसाब लगा रहा है
मेरी बीमारी में दूध खरीदने का।
तूने अपनी कमाई देखी है
हर महीने।
बचपन में तेरी किताबों और पढ़ाई के
लिये देखी कभी
हमारी मजदूरी
और मजबूरी को।
माना कि तेरे लिये हमारा हर काम
फर्ज था,
लेकिन वो कर्ज है आज तुझ पर
तू ब्याज भी नहीं चुका सकता
मूल की तो बात ही मत कर।

आँख मिचैली

मैं सोते हुये भी
जागा करता हूँ अक्सर
करवटें बदलना
क्रम है तेरे खयालों का।
खुली खिड़की से
मंद हवा से
पर्दे का थोडा हिलना
तुम्हारे आसपास होने का
आभास
और मेरे होंठों का
थोडा-सा फैलना
शायद मुस्कुराना है
और फिर बंद हो जाते हैं
कपाट
मेरी आँखों के।
तुम्हें दिल के तहखाने में
बंद कर।
रातभर यूँ ही
अनवरत
आँख मिचैली खेलता हूँ
तुम्हारे साथ।

आँसू की बून्द

आँखों से
निकलकर
गालों पर
लुढ़कते हुए
आँसू,
कुछ ठहरी
फिर गिरी।
उँगलियों को
गीलाकर
विलुप्त हो गयी।
भावनाओं की
लकीर
चेहरे पर
छोड़ते हुए
मन को उद्वेलित
और आँखों की
प्यास बढ़ाकर
जिन्दगी को
खारा बना गयी.....।

खत

बहुत दिनों से
साफ नहीं किया था
उस बक्से को।
जमी हुई धूल
जगह-जगह से टूटा हुआ
पड़ा हुआ था
निःशब्द, मौन।
मन कुछ विचलित-सा हुआ
धूल हटाकर देखा
कई खत थे उसमें ।
एक बीती जिन्दगी के
यादगार लम्हों की दस्तान।
स्मृति पटल पर फिर
हुए चित्रित
विस्मृत-से पल।
फटे हुए, पीले-से
बिखरे-से,
कुछ अक्षर मिटे हुये
जिन्दगी की तरह।
बीती उम्र को टटोला
कुछ किस्से
जो बन गए थे
जिन्दगी के हिस्से
उन खतों को देखने
आँसु दौड़कर आये

और मिलन भी हुआ दोनों का
हाथों के स्पर्श से
फिर बिखरते
टूटे हुए सपने
समय की धूल
और मौन भी.....
बिलकुल बक्से की तरह।
शायद उन खतों के मौन शब्द
चीखते हुए निकले हों
और छोड़ गए हों
अपना असर।

हमारी दौलत

अभावों में जीवन जीया,
करते रहे वो
हमारी चाहतों का ख्याल।
दो पैसे बचाने दूर तक
पैदल ही चला करते थे
अपनी भूख की चिंता नहीं
पहले हमें खिलाते थे।
पैदल चलना अच्छा होता है
स्वास्थ्य के लिए
मुझे भूख नहीं है तुम खालो
मैं ठीक हूँ अपना ख्याल रखो,
अक्सर कहा करते थे
ऐसे जुमले ।
दिनभर का काम, थकान
और रात को निढाल से ।
सुबह फिर नयी उमंग के साथ
हमारी जिम्मेदारियाँ निभाने
चल पड़ते कदम ।
उफ्फ्फ।
किसी मजदू रसे
कम मेहनत नहीं थी
हमारे माँ-बाप की जिन्दगी।
बैठें हैं आज हम
ठंडी हवा में
ये उनके पसीने की बदौलत है ।

उनकी मेहनत मजदूरी
हमारी सबसे बड़ी दौलत है।

बैठक

बैठक हुई,
चाय के बारे में राय।
जहाँ मंगवाई गई
सबसे पहले चाय।
एक-एक चुस्की पर
एक-एक मशवीरा,
गहन चिंतन
लम्बी मीटिंग
दौर चले
चाय पे चाय
नतीजा.....
फिर तारीख तय की गयी
अगली बैठक की ।

परिवर्तन

बसन्त के भ्रमर ने
उमस की चींटियों से
मिलकर
आम्रवृक्ष की
कोयल के साथ होकर
बारिश के मेंढक से कहा....
हमें कुछ काम दीजिये।
तभी उसने कहा
चुनावों के मौसम
और मौसम के चुनावों में
कोई फर्क नहीं....
जाओ। आराम करो
हमें बोलने दो ।

टूटते शब्द

अन्तस् की गहराई में
भावनाओं की
हिलोरें।
द्वन्द और मन्थन
के बीच
मन मोतियों को
अधरों के किनारे पर
लाने की चाह।
सोचा कि धुंधली
होती विस्मृतियों को
दिखाऊँ ढाढस के रंग।
उकेरना चाहा
स्मृतियों को।
लेकिन मन के सलवटी
कागज पर
उदास कलम से निकले
बिखरते
टूटते शब्द।

शहादत

एक पिता की आँखों में
बेटे की बलिदानी की छवि,
अपने लिए काम आने वाले
कन्धों की कमी देखी ।
एक माँ की आँखों में
कोख की पीड़ा और आँखों
में नमी देखी ।
एक पुत्र ने अपने सहारे की
साँसें थमी देखी ।
एक बेटी ने अपने जीवन की
खिसकती दरारी जमीं देखी।
आँखों के कोनों में
ठहरे हुए आँसू लिये,
क्रुद्ध...लेकिन लाचार और उम्मीदी
नजरें सत्ता की ओर देखती हुई ।
हाँ.....हथियारी युद्ध के बाद
मैंने जज्बातों के युद्ध को देखा है,
और उसमें एक शहादती के
परिवार को हारते देखा है ।

थोड़ा आराम कर लूँ

शिशु अवस्था से न जाने कब
बचपन आ गया ।
सोचा थोडा आराम कर लूँ ।
जिन्दगी एक सीढ़ी ऊपर चढ़ने लगी।
उछलता हुआ बचपन
न जाने कब
यौवन की दहलीज पर
खड़ा हो गया ।
सोचा थोडा आराम कर लूँ ।
पतंग की तरह उड़ती हुई जिन्दगी
न जाने क्यों धागे-सी उलझती रही ।
सुलझाने के प्रयास भी
उलझते रहे स्वयं से ।
फिर सोचा थोड़ा आराम कर लूँ ।
अब जिन्दगी ने उछलना
बन्द कर दिया ।
ढलान पर थी आगे बढ़ने के लिए
तीव्रगति से ।
अंततःजरावस्था से मित्रता की
सोचा अब थोडा आराम कर लूँ ।
अरे ! अब आराम ही तो है
लेकिन मन व्यथित है, तनअतीत है ।
क्रोध में आकर कह ही दिया जिन्दगी से---
अब तो आराम दे दे ।
बड़े ही अट्टाहास से हँसते हुए

जिन्दगी कहने लगी,
तूने ही तो मुझे अब तक चला रखा है,
अनवरत लक्ष्यहीन,
अंधेरी और कंटीली राहों में
भटकाए रखा मुझे ।
अब तो मेरे आराम के दिन आ गए हैं ।
तू अपना सोच,
अब मैं आराम करूँगी----
चिर निद्रा में सोऊँगी ।

सावन

वृक्ष की टहनियाँ नाच रही हैं,
मयूर उल्लासित है,
मिट्टी झूमकर
ऊपर उठ रही है,
सूरज कुछ
धुंधला-सा लग रहा है,
किसी के केश पाश से
छूटकर
तेज भागती हुई खुशबू
कुछ अंश देकर
मदमस्त कर गयी ।
मेघ इत-उत्
गले लग रहे हैं,
ये सब क्या हो रहा है.....
लगता है
हवाओं की पीठ पर
सावन सवार हो गया है ।

जिद्दी जिंदगी

ढीले पड़े हैं
जीवन की
वीणा के तार ।
तार-तार होते
सपनों में,
मन्द पड़ी है
मधुरतान ।
विचारों के
ताने-बानों में,
तानों के
तीर मारकर
खुद घायल पड़ीहै---
जिन्दगी जिद्दी बड़ी है ।

साहित्य रूप

मन की संवेदनाओं से भरी किताब को देखा है,
हाँ....मैने साहित्य को देखा है ।
कलम से निकलने वाली स्याही में
कभी मायूस जज्बातों में,
कभी मुस्कुराते शब्दों में,
जिन्दगी-सी बेतरतीब पंक्तियों में
मैने साहित्य को देखा है ।
कभी गरीब के छप्परों में,
कभी भिक्षुक के खप्परों में,
कभी बेरोजगारी की लाचारी में,
झूठी मुस्कान से खिले चेहरों में,
मैने साहित्य को देखा है ।
कभी अपनों की गद्दारी में,
कभी परायों की वफादारी में,
कच्ची डोर में झूलते रिश्तों में,
कर्जे में डूबी मकान की किश्तों में,
मैने साहित्य को देखा है ।
कभी प्रकृति की सुरम्य वादियों में,
कभी गगन से बरसी नदियों में,
कभी उजली-काली शांत रातों में,
चबूतरों पर होने वाली बूढी बातों में,
मैने साहित्य को देखा है ।
पिता के झुके कन्धों में,
माँ के चेहरे की झुर्रियों में,

कभी औलाद के भूलते फर्ज में,
तो कभी उठते हाथों की अर्ज में,
मैने साहित्य को देखा है ।
फटी कम्बल से झांकते मुरझाये तन में,
कभी शरशैया पर सोकर बिंधे हुये मन में,
कभी सड़कों पर इंतजार करते मरे हुए शरीर में,
कभी अस्पताल में पड़े मृतप्रायः पीर में,
मैने साहित्य को देखा है ।
कभी लहराते हुए तिरंगे में,
कभी लहू से रंगी वर्दी में,
कभी देशभक्ति की गर्मी में,
कभी सीमा पर ठिठुरती सर्दी में,
मैने साहित्य को देखा है ।
कभी माथे पर ताज की तरह चढ़ते हुए,
जीवन की नींव में पाहन-से गढ़ते हुए,
कहीं पाठशाला में नन्हें हाथों में पढ़ते हुए,
तो कभी सड़क पर रद्दी के भाव बिकते हुए,
मैने साहित्य को देखा है ।
कभी विरह तो कभी प्रेम में तड़पते हुए,
कभी पतझड़ में भी उसे महकते हुए,
कभी सपनों के फटे बिस्तरों पर सोते हुए,
दिन में हसकर रात को कभी रोते हुए,
मैने साहित्य को देखा है ।
कभी पुरुस्कारों की होड़ में लड़ते हुए,
कभी मंचों पर दौड़ में चढ़ते हुये,
वृद्ध कलम के सुबकते मुखड़ों में,

कभी पुराने पीले कागजों के टूकड़ों में,
मैने साहित्य को देखा है ।
मीरा, मीर, गालिब, कबीर,
रहिमन, तुलसी, वाल्मिकी,
वेदव्यास, जिनवाणी, गीता,
बाइबिल, कुरान, गुरुग्रंथों में,
शांत पड़े दोहों में, मौन हुई चैपाइयों में,
उदास पड़ी शायरियों में और
जंजीरों में बन्धी-सी धर्म की सच्चाइयों में...
मैंने साहित्य को देखा है ।

बेरोजगारी

रोज नये फार्म भरना,
तैयारी करना,
परीक्षा देना,
पेपर आउट होना,
फिर परीक्षा देना
कोर्ट का स्टे आना,
फैसले का इंतेजार करना
रोज वेकेंसी देखना ------
उफ्फ --
कौन कहता है कि
सरकार काम नहीं देती
बेरोजगारों को।

जीना चाहता हूँ

जीना चाहता हूँ
जब तक तुम्हारी आँखों में
बिम्ब हो मेरा,
बन्द आँखों में छवि हो
हृदय में,
मैं जीना चाहता हूँ ।
जब तक स्पर्श हो
तुम्हारी उँगलियों का,
अन्तस् की गहराइयों तक
मैं जीना चाहता हूँ ।
दूर भी हो जाओ मुझसे,
तुम्हारा प्रतिबिम्ब
ओझल न हो मेरी आँखों से
तब तक,
मैं जीना चाहता हूँ ।
रूठ भी जाओ जो कभी
मुझसे,
तुम्हारे होठों की
पुनः मुस्कान तक
मैं जीना चाहता हूँ ।
धुआँ उठा है सिर्फ अभी तो,
आग लगने तक
मैं जीना चाहता हूँ ।
चाहें मुरझायें उम्मीदों के
सभी उपवन यहाँ पर

तेरे हाँ का फूल खिलने तक
मैं जीना चाहता हूँ ।
मर भी जाऊँ अगर
तुमसे दूर हो कर,
तुम्हारे आने तक
फिर से जीना चाहता हूँ ।

मित्र

जीवन के हर मोड़ में
पथ प्रदर्शक,
हर अँधेरे में
एक उजाले की
किरण,
हर दुःख में
हरदर्द में
आह के साथ
मन ही मन में
निकलने वाली ध्वनि,
उदासी के बाद
चेहरे पर मुस्कान
के पल,
बिछड़ने के बाद
आलिंगन का सुख,
झोंपड़ियों के
टूटे छप्परों में
सूरज के सोने-सी
चमक में,
उसमे रहने वाले
सन्तोष मन के धनी
भूख मिटाने वाली
रोटियों की
आकृतियों में,
किसी की सहायता

करने पर
मिलने वाली खुशी में,
माँ-बाप के आशीष भरे
शब्द ध्वनि में,
जिन्दगी के हर
सुख-दुःख में
आभासित
और अंतिम समय में
सबसे अधिक
याद आने वाला
मित्र....
शायद
वह ईश्वर ही है ।

अस्तित्व

जन्म हुआ मेरा
पिता के घर
कहीं खुशी
कहीं गम था।
कन्या जो थी मैं।
जन्म से लेकर ब्याह तक
परिभाषित किया गया मुझे
“पराया धन” से।
पिता के घर आँगन में रही
तुलसी बनकर।
चली गयी दूसरे घर में
चिडिया की तरह।
बदल गया कुल
और पहचान।
ससुराल में रही मर्यादाओं
बंदिशों के दीवारों के बीच।
मातृत्व पाया,
अधिकार नहीं
कर्तव्य के रूप में।
संतानों में मेरा खून
लेकिन उनके नाम में
मेरा अस्तित्व नहीं।
जिम्मेदारियों को वहन करते-करते
न जाने कब
जीवन का सूरज ढलने लगा।

अस्त होता अस्तित्व ???
हो गई मैं पंचतत्व में विलीन।
कहने लगे लोग
खत्म हो गया मेरा अस्तित्व।
मेरी आत्मा ये सुनकर
आश्चर्य और क्षोभ से भरी
सोचने लगी।
जीते जी तो कभी अहसास नहीं हुआ,
मेरे अस्तित्व का।

बिजली

बहुत ही प्राथमिकता से छपा था समाचार
अखबार में
बिजली गिरने का।
पेड टूटने का
खम्भे गिरने का
खण्डहर ढहने का।
निगाहें पडी अन्य समाचारों पर
सर्वत्र गिरी थी बिजली।
शहीद की खबर
एक बेटा विदा हुआ था
घरवालों से
मन में सपने समेटकर
घर आया तिरंगे में लिपटकर
बिजली गिरी परिवार पर।
कुत्तों के द्वारा
कन्या भ्रूण नोंचने की खबर
बिजली गिरी मानवता पर
अपने बेटे बहू द्वारा
वृद्धाश्रम ले जाने की खबर
बिजली गिरी माँ-बाप के
अरमानों पर।
चार साल की मासूम से
बलात्कार की खबर
बिजली गिरी मानवीयता पर।
अपनों के द्वारा अपनों से

धोखा खाना
बिजली गिरी विश्वास पर।
पैसों के लिये
भाई को मारने की खबर
बिजली गिरी संबंधों पर
छल, कपट, बेईमानी
की खबर
बिजली गिरी नैतिकता पर।
अंगारों से लड़ रहे थे
हर शब्द
मैं था अचल,
मौन,
निःशब्द।

संस्कृति

हमारे देश की
संस्कृति की आकृति में
विकृति आ गई,
पाश्चात्य सभ्यता
युवा पीढ़ी को भा गयी
संस्कारों की मिट्टी को
जिस पानी से सींचा हमने
बीज बना अब वट वृक्ष
जड़े फैलती और
जमीन में होती
मजबूत।
आओ। तेजाब डालकर
फिर से बीज बो,
भारतीयता का
सींचन करें
सुसंस्कारों के पानी से
अस्त होते प्राचीन सभ्य के
संस्कृति सूर्य को
उदित करें।

बचपन

बचपन
कहानियों में बीता,
खूब खेले हम
कभी राजा के साथ
कभी रानी के साथ
कभी परियों के संग
आसमान की सैर की।
नींद मुस्कानों भरी
और सपने
बिना धरातल के।
बिना पंखों के भी उडते थे।
मन के साथ
आह्लादित तन भी।
धरा अम्बर सब अपना था।
कपड़ो पर पैबंद होते थे,
फिर भी खेल में
राजा बन ही जाते थे,
किन्तु सब कुछ स्वार्थ से दूर,
अहंकार से परे,
मलिनता रहित
वह निर्धूम बचपन।

एक कविता तुम पर

कल कुछ शब्द उकेरे थे
कागज पर।
कलम उतावली हो रही थी
उंगलियों के साथ
निगाहें तो कागज पर ही थी,
धमनियों में प्रवाह बढ रहा था।
मस्तिश्क की शिराओं में
संकुचन और फैलाव
स्थिर नहीं था,
कभी होंठ मुस्कुराते
तो कभी ललाट पर
सिलवटें पड़ती।
पैर, बिना धुन के नृत्य पर थे
कंठ भीतर ही भीतर
ध्वनित हो रहा था।
उफ्फ्फ्.....
शरीर के आंतरिक और
बाह्य भावों का
वैचारिक युद्ध है,
तुम पर कविता लिखना।

रोटी

जिन्दगी निकल रही है
रोटी की जुगाड़ में।
समय
मुझे गेहूँ-सा पीस रहा है
रिश्ते बेलन की तरह
दबाये जा रहे हैं।
हौंसला और अनुभव
दे रहे हैं नया आकार
फिर होती है अग्नि परीक्षा
और निकल आता हूँ
होलिका की गोद से
प्रहलाद की तरह।
जमाना मुझे रोटी कहकर
मुस्कुराने लगा।
पता नहीं----
जिन्दगी रोटी है
या रोटी जिन्दगी है।

प्रेम की मूरत

मानता हूँ

कि तुम्हारा दिल
पत्थर है,
तो मैं भी
शिल्पकार हूँ प्रीत का ।
अहसासों की छैनी
और भावनाओं की
हथौड़ी से
आकार दूँगा
तुम्हारे दिल को
प्रेम की मूरत का ।

कविताओं से मुलाकात

आधुनिक शोर में
अलंकृत शब्द
मौन पड़े थे ।
साहित्य के पुराने
पीले कागजों पर
जमी परत से
छंद भी धूमिल थे ।
निर्जीव-से
काव्य शास्त्रों से
बात हुई,
हाँ.....
आज मेरी
उन कविताओं से
मुलाकात हुई ।

वर्ष

सुनो ए जाने वाले वर्ष!
तुम जा रहे हो
या हम विदा कर रहे हैं,
नहीं रुकोगे
हमारे रोकने पर भी ।
याद करो
जब तुम्हारे
प्रथम दिन की
सूर्य रश्मि का
स्वागत किया था
दुनिया ने,
हर्ष और नयी उम्मीद के साथ ।
आज तुम्हें भूलकर
प्रतीक्षा में है दुनिया
नये सूरज की ।
हम साथ रहे।
365 उजालों और
उतने ही अंधेरों में ।
तुम्हारी उम्र पूर्ण हुई ।
उतर जाओगे घर की
दीवारों से,
हटा दिए जाओगे
टेबल और अन्य स्थानों से ।
पड़े हुए मिलोगे
किसी रद्दी के ठेले पर,

कूड़ेदान में या नाली में ।
वहाँ भी झाँक रही होंगी
कुछ तारीखें----
फटी और गंदी अवस्था में,
जो कभी उम्मीद और सपनों
की नजरों से,
बार-बार देखी गयी थी ।

पतवार

जिन्दगी के
कैनवास पर
आशाओं की
तूलिका से
सपनों के कुछ
रंग भरे
आँसुओं की
एक बारिश ने
सब कुछ
धोकर रख दिया ।
इंद्रधनुषी
खुशियाँ
पाने को कितने
जतन किये,
भाग्य के एक तूफां ने
सब कुछ
खोकर रख दिया ।
गहरी बहुत थी
रिश्तों की झील,
प्रेम और सम्बंधों की
पतवार ने
डूबो कर रख दिया।

समय की गति

देख रहा था वह,
समय की सुइयों को।
देख रहा था
समय की गति,
कौन-सी सुई
कब चली,
कहाँ रुकी ।
उसके वश में था
समय को आगे-पीछे करना।
नहीं कर सकता ये काम
स्वयं ईश्वर भी।
बहुत समय निकल गया
समय को ठीक करने में।
वह समय को देखता रहा-----
घड़ी सुधारक बनकर
और समय उसको देखता रहा----
बड़ी ही कुटिलता से।

खेत

बहुत इतरा रहा है
पेड़
क्योंकि खेत के बीच में है।
चिढ़ा रहा है
खेत की बाड़ के साथ
खड़े पेड़ को,
जो हाशिये पर है।
दंभ से भरा
खेत के बीच
अपने बीज बिखरने का
और उनके अंकुरित होने की
उम्मीद में।
पर ये क्या
हर बार तोड़ देता है
अंकुरों को
किसान हल जोतकर।
अब पौधे बड़े हो रहे हैं
खेत की बाड़ के साथ
सटे हुए पेड़ के।
बाड़ को और मजबूत करते हुए।

पंख

जब मन आकाश हो,
हौंसलों के पंख हों,
कौन रोक सकता है
अपनी उड़ान को,
निकला हूँ नभ् नापने
धरती पर पैर जमाकर
रोक नहीं सकता
हवा के संग अपनी
पहचान को।
लेकिन हाँ..
जीतना है आकाश तो
ये नहीं देखना
ऊँचाई का नाप कितना है,
देखना है सिर्फ इतना कि
पंखों का फैलाव
कितना है।

कविता का अवतरण

रग-रग में उद्वेलित होकर
मन के भीतर से जब मन की भावनाएं
और मस्तिष्क की कल्पनायें
उन्मुक्त आकाश में
उड़ने लगती हैं,

जब कोई पीड़ा
बाहर निकलने
आतुर होने लगती है,

जब शब्द शक्ति
साधना से आवृत्त होकर
शारदा चरण में रमते हुए
शीश चढ़ने लगती है,

जब आह्लादित मन
भक्तिमय होने से
अन्तस् की ऊर्जा
वीणा के तार पर
स्वतः झंकृत होने लगती हैं,

जब दिन, रात, प्रकृति
अपने परम् सौंदर्य से
मानव मन की अनकही
आवाज बनकर

कागज पर उतरने लगती है,

जब जिव्हा
शब्द और मन के साथ
नृत्य करने लगती है,

जब कलम
कभी हल
कभी तलवार
बनने लगती है,

शायद तब कोई कविता
अवतरित होने लगती है।

रिश्ते

एक और हो गयी दुर्घटना,
टकरा गये
दो अहंकार,
टूट गयी रिश्तों की कमर,
राय, मषविरा की डिग्री लिये
डॉक्टरों ने किये प्रयास
फिर से जोड़ने का।
अब औपचारिक हँसी लिये,
कराह रहे हैं
भीतर के दर्द से,
प्लास्तर चढ़े हुये रिश्ते।

दराज

कुछ टूटे हुये,
कुछ बिखरे हुये,
कुछ टूटकर जोडे हुये,
कुछ भूले हुये,
कुछ दरारें पडी हुई,
कुछ
“कभी काम आएंगे”
सोचकर
संभाल रखे थे....
जिन्दगी की दराज में
आज पुराने रिष्तों को
खंगाल बैठा।
मुझे अनदेखा कर
मुँह फेर रहे थे,
कुटील हँसी लिये
वे रिश्ते।

उन दिनों की बात

ये उन दिनों की बात है'
जब पिताजी के माथे की सलवटें
घर में आकर हमारे सामने
मुस्कुराहट में बदल जाती थी।
माँ की तो डॉक्टरी हो गयी थी
विवेक से खर्च करने के विषय पर।
जब परिस्थितियों ने सब सीखा दिया था।
मुझे आज भी सब याद है
'ये उन दिनों की बात है'

याद आते हैं वो आने के जमाने
चार आने आठ आने
जेब में आते ही उछल पड़ते थे।
वो चार बिस्किट भी सब बांटकर खाते थे।
दोस्तों को बताकर खूब इतराते थे।
"हमें अच्छे नहीं लगते"
कहकर माँ- बाप हमें खिला देते थे।
मुझे आज भी सब याद है
'ये उन दिनों की बात है'

सर्द रातों में खुद फटा हुआ
ओढ़कर हमें लपेट लेते थे
जो भी था उनके पास।
हम महफूज थे ठंड की
बीमारियों से

उनके स्नेहभरी गर्माहट पाकर।
देखा है उनके हृदय को
अभावों से भीतर ही भीतर
ठिठुरते हुए।
मुझे आज भी सब याद है
'ये उन दिनों की बात है'।

केलुपोश छत से
बरसात में टपकती हुई बूंदे
आह्लादित करती थी हमें।
कौतुहल भरा नजारा था
हमारे लिए
जगह-जगह खाली बर्तन रखना।
और माँ-बाप के सपने नये पंख पा जाते थे
एक घर बनाने का।
नये हौंसलों के साथ कहते थे
अब की बार तो बन ही जायेगा।
मुझे आज भी सब याद है
ये उन दिनों की बात है

कवि तुम जिंदा हो

हे कवि।
तुम शब्दों में जिन्दा हो,
लेखनी में
स्याही भरने से नोंक तक
आने की प्रक्रिया
और कागज पर लिखावट में
जिंदा हो।
तुम धरा और शून्य के बीच
सरगम, लय, ध्वनि में
जिंदा हो।
तुम लोगों की मुस्कानों में
और हृदय के कोनों में
जिंदा हो।
तुम किताबों के मौन पन्नों में
कुछ बोलते हुये
जिंदा हो।
तुम दुनिया के मंच पर
जीवन के संचालन में
जिंदा हो।
हाँ.....
तुम विदेह होकर भी
साहित्य की देह में जिंदा हो।

विलीन

वह चला गया,
जिन्दगी से जद्दोजहद कर।
साथ में ले गया
मेरी जिन्दगी भी।
मेरे मात्र हाड पिंजर में
स्पंदन है उसकी साँसों का।
उसकी याद में
धूलक चिपक रहे हैं,
मस्तिष्क और हृदय में।
पंचतत्व, धर्म
पाप, पुण्य
स्वर्ग, नर्क
कर्मफल
देह, आत्मा
मुक्ति, पुनर्जन्म,
न जाने कौन-सी
परिभाशा में
विलीन हुआ वह।

माँ

जगा देता है माँ को,
प्रातःकाल के कर्तव्य का सूरज,
मध्यान्ह काल में तपता मन
काम के बोझ से,
संध्या में निढाल तन
अस्त होते सूर्य-सा।
सोते वक्त थकान टूट-टूटकर
गिरती है अस्त-व्यस्त बिस्तर पर।
शयन कक्ष में रात को
दीवारों पर चिपका देती है
दिनभर के काम
और मन की खूंटियों पर
टांग देती है कल की योजना,
जिसे सुबह होते ही उतार कर
पहन लेती है.....
और इस तरह माँ
बिना अवकाश लिये
प्यार, ममता और वात्सल्य
के बीज बो कर
परिवार के खेत को सींचती है
स्वयं के त्याग और थकी हुई मुस्कान से।

लक्ष्मी का श्रृंगार

नव कलिका ने
पग धरे शूलों पर
जीवन पथ ही
संग्राम भरा।
हथेली पर मेहंदी
नहीं
तलवारों का
कठोर छोर।
कलाइयों का जोश
फड़कती भुजाओं तक।
आँखों में अंगार
हाँ, यही था लक्ष्मीबाई का
मूल श्रृंगार।

अँधेरों से मुलाकात

आज कुछ अँधेरों से
मुलाकात हुई,
जो कानों में
उँगलियाँ रखे हुए थे,
परेशान थे वे
उजालों के अँधों से।
दिन में सुनी हुई
सभी अनदेखी बातें,
कह देते थे उनसे
और उनका साथ देते थे,
झूम-झूमकर
कुछ काले
कुटिल नुकीले पंख।
आखिर एक दिन
खोल ही दी आँखें
अँधेरों ने।
तब से मौन और दुबक कर
बैठे गए हैं,
उल्लू और चमगादड़ों के
झुण्ड।

बेटी

वो आँगन की तुलसी है
जीवन के बाग का
महकता फूल है।
घर घोसले की चहकती
चिड़ियाँ है।
प्यारा खिलौना है,
गुड़िया है।
दुःख की साझेदार है,
तपती रेत में
ठंडी फुहार है।
खुशियों का बाजार है,
और हाँ वो पराया धन है।
अभावों में रहकर भी
नहीं करती
कोई शिकायत,
समझदार है।
वो बेटी है,
उसे संभालना आता है
खुद को भी,
परिवार को भी।

जिंदगी तेरे कितने रूप

तुम बचपन का
भोलापन हो,
चढ़ते यौवन का प्यार
और वृद्ध अवस्था में
एक अनुभव हो।
कभी स्कूल के सुबह की
पहली घण्टी की तरह
अनुशासित हो
तो कभी छुट्टी की घण्टी
की तरह चिल्लाते हुए
हँसते हुए बच्चों की तरह हो।
कभी हिंदी के
वर्णमाला की तरह सरल
तो कभी गणित के
समीकरण की तरह हो।
दीपावली की
छुट्टियों के साथ-साथ
भारी
होमवर्क की तरह भी हो।
कभी सुबह की
नई उमंग हो
तो कभी शाम की तरह
थकी हुई-सी।
एक गेंद की तरह
गिरती-उठती हो,

कभी लट्टू तो
कभी छुपा-छुपी के
खेल की तरह हो,
कभी गाँव की सूखी
नदी के
उघड़े तन की तरह हो
तो कभी तेज धारा लाकर
सीपियों के कवच को
बहा ले जाती हो।
न जाने कितने
वेश बदलती हो...
ए जिन्दगी !

फैमेली डॉक्टर

मैं एक डॉक्टर हूँ,
कुछ परिवारों का
फेमिली डॉक्टर भी।
उन्हें भरोसा था मुझ पर
कि मेरे पास इलाज है
हर बीमारी का।
अचानक एक परिवार
ग्रसित हो गया
किसी अनजाने वायरस से।
लक्षण भी कुछ अजीब थे।
उस परिवार के लोग
बात नहीं कर पा रहे थे
आँखें मिलाकर।
घर के बुजुर्ग आँगन में ही
बैठे रहते थे,
उदासी के साथ।
बहु के माथे पर सलवटें ही
रहती थीं।
और बेटे के कानों में तो
भारी समस्या हो गई थी
कि उसे सिर्फ उसकी
पत्नी की ही बातें सुनाई
देती थी,
माँ-बाप की नहीं।
मैं कुछ समझ नहीं पा रहा था

उन सबकी बीमारियों को।
मैने डिक्शनरी और
किताबों में भी ढूंढा,
उसका इलाज,
लेकिन कुछ नहीं मिला।
मुझे एहसास हुआ कि
शायद डॉक्टरी
अधूरी है मेरी।
मेरे पास शारीरिक और
मानसिक बीमारियों का
इलाज तो था,
लेकिन पारिवारिक बीमारियों
को ठीक नहीं कर सका,
एक “फेमिली डॉक्टर” होते हुए भी।

सिस्टम

मासूम बच्चियों से
बलात्कार,
हैवानियत।
क्या कर सकता हूँ मैं
क्योंकि मैं पुलिस नहीं
मैं अदालत नहीं
मैं कानून नहीं
मैं सरकार नहीं।
बस...
क्रोधवश
चिल्ला सकता हूँ।
अगर कुछ कर भी लिया
तो ज्यादा से ज्यादा
आक्रोशित भीड़ के साथ
कुछ नारे लगा दूँगा,
कैंडल मॉर्च में शामिल
हो जाऊँगा,
धरने पर बैठ जाऊँगा,
थोड़े आँसू बहा दूँगा,
गालियाँ दे दूँगा..।
उस मासूम का दर्द,
नोंची हुई उसकी देह,
घायल पड़ी उसकी आत्मा
शून्य हुए माँ-बाप की पीड़ा
ये सब बोझ झेल रहे

उनके कांधों पर
मैं हाथ रख भी दूँगा
तो क्या हो जाएगा।
आँखों पर पट्टी
पैरों में लकवा
सबूत की हथकड़ी से बंधे
कानून को देख रहे हैं
उम्मीद की नजरों से।
तैयार रहिए
ऐसी और खबरें पढ़ने के लिए।

दर्पण

आँखे विचलित हैं,
“दृष्टि दोष” से।
जिस्म पर
बार-बार
पड़ रहे हैं
विकृत और
अमानवीय विचार।
धूमिल हो रहे हैं
समाज के
अपने-अपने
दर्पण।

जुगलबंदी

क्या खूब जुगलबंदी चली
तीनों में...
दर्द बयां करने की।
आँखें बरसती रही,
शमा पिघलती रही,
कलम चलती रही
और
ये सब नजारे
देखने वाली रात
सुबह तक
घायल पड़ी रही।

चुनाव

हाँ मैं चुनाव हूँ।

मैं शासन भी हूँ और लोकतंत्र भी,
मैं आदर भी हूँ और षड्यंत्र भी।
देश के मझधार की नाव हूँ,
हाँ मैं चुनाव हूँ।

मैं दावा भी हूँ और वादा भी,
दिखावा भी हूँ और सादा भी।
बसा हुआ पर बिखरा गाँव हूँ,
हाँ मैं चुनाव हूँ।

पाँच वर्ष की वधु हूँ तो कभी सौत भी,
कभी पूर्णकाल कभी अकाल मौत भी,
नैतिकता से अलगाव हूँ,
हाँ मैं चुनाव हूँ।

ईमानदार भी हूँ पर बिकता भी हूँ,
सच बोलता हूँ तो झूठ लिखता भी हूँ।
सोने के हाथ और लोहे के पाँव हूँ,
हाँ मैं चुनाव हूँ।

धर्म, जाति, सम्प्रदाय का चिठ्ठा हूँ,
पद हूँ, पैसा हूँ और प्रतिष्ठा हूँ।
पर सपनों की अधूरी छांव हूँ,

हाँ मैं चुनाव हूँ।

शतरंज हूँ, युद्ध हूँ, अखाड़ा हूँ,
साम, दाम, दंड का एक बाड़ा हूँ।
हार-जीत का सफल दांव हूँ,
हाँ मैं चुनाव हूँ।

कवितायें

कौन कहता है
कि कवि अकेला लिखता है,
भावनाएँ आमंत्रित करती हैं
कुछ शब्दों को,
माँ भेज देती है
उपमा और अलंकार
भेजती है।
कलम और कागज साथ देते हैं
परिजन की तरह।
बाहरी दुनिया से हटकर
हो जाते हैं अन्तस् में
एकाकार,
और लिख देते हैं हम
कुछ कविताएँ।

समय

जिंदगी को
जिंदगी पर समझते रहे,
समय के सिक्के
दिन-रात में उछलते रहे।
प्रतीक्षा में थे हम
अपने समय की,
और देखते-देखते
न जाने कब पराया हो गया,
यह समय भी।

छोटी-सी जिंदगी

छोटी-सी जिंदगी में
चलते रहे
लम्बे रास्तों पर।
फूल और काँटों से
गठबंधन करते हुये,
हर मोड पर सीखा
नया अध्याय।
समझते-समझते
न जाने कब मंजिल आ गई।
ऐ मेरे सपनों,
ऐ मेरी तृष्णाओं,
सुनो! रहने दो
जिंदगी ने मिलवा दिया है
जिंदगी से।

याद

कभी आँखें बन्द कर
करता हूँ प्रयास
दुनिया को भूलने का
अकेलेपन में ।
तभी कानों में
एक संगीत-सा बजता है
वीरानों में.....
तुम्हारी याद भी अजीब है ।

जिंदगी ऐसी भी है

जिन्दगी
फुटबाल के मैदान-सी हो गयी है।
जहां घास सिर्फ रौंदी जाती है,
लोग हमें पाने के लिए दौड़ते हैं,
लक्ष्य समीप आते ही लात मार देते हैं ।
इसे देख दूसरे लोग करते हैं,
आनन्द की अनुभूति ।

सपने

जिन्दगी
आसमान -सी लगती है,
कभी ठंडी हवाओं से घिरी
तो कभी तेज धूप फेंकती हुई ।
कभी बरसती, कभी तरसती ।
कभी चाँद-सी शीतल
तो कभी तारों से सजी हुई ।
उफ्फ्फ ।
सपने तो छितराये बादलों-से हैं ।

सम्बन्ध

रिश्ते....
पहले व्यापक थे
आजकल
पैरामीटर में हो गए,
सम्बन्ध,
पहले इंच में थे,
अब
किलो मीटर में हो गए ।

ओह माँ

मुझे पाकर तुम
कितनी खुश हुई थी माँ
दोनों तरफ से झर रही थी ममता
दूध से भी,
आँसुओं से भी
आज अनभिज्ञ हूँ मैं
तुम्हारे आंचल के गिलेपन से
और आँखों की भीगी
बरौनियों से।

अर्थ

आज की दुनिया में
अर्थ बिना
जिन्दगी का
कोई अर्थ नहीं।
अक्सर देखा है लोगों को
अर्थ बिना
व्यर्थ होते हुए।

अभिसार

जिंदगी की
रेखागणित में
उलझे हुये हैं हम,
रिश्तों का
क्षेत्रफल ज्ञात करने में।
आओ।
दो सरल रेखाएं बनकर
प्रेम का अभिसार
बिन्दु बना दें हम।

तन्हा

मैं
अक्सर सोचता हूँ
तन्हाइयों में
तुम्हारे बारे में ।
पर ये क्या?
तुम्हारी याद
आते ही
मैं तन्हा
कहाँ रहा ??

वजूद

आकाशगंगा में
एक तारा
समुद्र में
एक बूंद
रेगिस्तान में
एक कण
और तुम्हारे दिल में
हम
अपना वजूद ढूंढते हैं।

आभास

कैसे होगा आभास हमें
एसी की ठण्डी हवा में,
पिता के मेहनत की
पसीने की बूँदों का।

वस्तु

जिन्दगी में
हम एक वस्तु बनकर रहे,
कहीं बेमोल पड़े रहे,
तो कहीं सिर्फ इस्तेमाल हुये ।

आँसू

यूँ तो सैंकडों आँसू छुपे हैं
आँखों में....बेमोल
बाहर गिरी जो बूंदे,
अनमोल हो गयी।

रिवाज

काम के लिये तलवे घिसा दिये
उसने जूतों के,
नादान अनभिज्ञ था...
तलवे चाटने के रिवाज से।

तरीका

जूते तो मैंने
सलीके से उतार कर रखे थे,
लोगों की ठोकरों ने
समझा दिया,
सही तरीका।

आहट

जब भी तुम्हें सोचकर
हो जाता हूँ आहत
तुम्हारी हर याद
अहसास है
तुम्हारी आहट का ।

व्यक्तित्व दर्पण

नाम - नरेन्द्रपाल जैन
जन्म - 21.09.1974
जन्मस्थान - ऋषभदेव, जिला उदयपुर (राज.)
पिता - श्रीपाल जी जैन
माता - कमला देवी जैन
पत्नी - सुनीता जैन
बेटियां - प्रेरणा, परिधि जैन
मो. - 9785205694
ई-मेल - narendrapaljain@gmail.com
प्रकाशन - मंथन .. एक सोच, मनोभाव, गागर (काव्य संग्रह पुस्तिकायें), छः साझा पुस्तकें (काव्य संग्रह) प्यासे नग़में (काव्य संग्रह), जीवन माला (रुबाई छन्द संग्रह)एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अनेक रचनायें प्रकाशित।

सम्मान
1. साहित्य मंच एवं कवि सम्मेलनों के मंच पर विगत 22 वर्षों से सक्रिय।
2. राष्ट्रीय जैन युवा रत्न पुरस्कार मुम्बई।
3. अंतर्राष्ट्रीय युवा सम्मान, श्रवण बेलगोला बैंगलोर।
4. अंतरा शब्द शक्ति सम्मान और भाषा सारथी सम्मान, इन्दौर।
5. काव्य श्री सम्मान, प्रशासन द्वारा सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार सम्मान, साहित्य गुरु, कवि कुलभूषण, विश्व हिन्दी साहित्य संगठन द्वारा सम्मान एवं अनेकों पुरस्कार।
6. साहित्य श्री सम्मान- जून 2018, शब्द अलंकरण एवं शब्द साधना गौरव सम्मान- जुलाई 2018
7. 'पूर्व राष्ट्रपति' माननीया प्रतिभा पाटिल जी द्वारा कविताओं हेतु आशीर्वाद प्राप्त।
8. अंतरा शब्दशक्ति द्वारा 'हिन्दी कलमकार सम्मान'2019।
9. मातृभाषा उन्नयन संस्थान द्वारा 'भाषा रचनाकार सम्मान' 2019।

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी,
जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९,
अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com
मूल्य 150/-